अभिमन्युः
हतो हतः

अरुण सक्सेना 'अघोर आनंद'

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Arun Saxena "Aghor Aanand" 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRoseONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7825-181-8

Cover design: Aafiya Saifi
Typesetting: Namrata Saini

First Edition: May 2026

प्रस्तावना एवं अस्वीकरण

महाभारत केवल युद्ध का आख्यान नहीं, वह मानव-मन के संघर्षों का विराट ग्रंथ है।

अभिमन्यु का चक्रव्यूह-प्रवेश और वीरगति केवल वीर-रस का प्रसंग नहीं, वह मातृत्व, धर्म, नियति और दैवी-साक्षित्व के बीच खड़े प्रश्नों का केंद्र है।

इस खंडकाव्य में प्रयास यह नहीं कि घटना को पुनः कहा जाए, बल्कि उस मौन को स्वर दिया जाए जो एक माँ के हृदय में उठता है—जब धर्म का निर्णय व्यक्तिगत पीड़ा पर भारी पड़ता है।

कृष्ण यहाँ केवल ईश्वर नहीं, बल्कि साक्षी हैं।

सुभद्रा यहाँ केवल माता नहीं, बल्कि समस्त मातृत्व की वाणी हैं।

यदि इस संवाद में आपको प्रश्न अधिक दिखें और उत्तर कम—तो वही इस काव्य का प्रयोजन है।

यह काव्य-रचना भारतीय महाकाव्य महाभारत के द्रोण पर्व में वर्णित अभिमन्यु-वध प्रसंग से प्रेरित है।

कवि ने इसमें विशेषतः कृष्ण–सुभद्रा संवाद को आधार बनाकर अपनी काव्यात्मक कल्पना एवं अभिव्यक्ति के अनुसार प्रस्तुति दी है।

इस रचना का उद्देश्य केवल साहित्यिक, भावात्मक एवं दार्शनिक अभिव्यक्ति है।

किसी भी धर्म, आस्था, समुदाय या व्यक्ति की भावनाओं को आहत करना इसका उद्देश्य नहीं है।

इस काव्य में प्रस्तुत विचार कवि की रचनात्मक अभिव्यक्ति हैं, जिन्हें मूल ग्रंथ का शाब्दिक अथवा ऐतिहासिक पुनर्प्रस्तुतीकरण न माना जाए।

पाठकों से अपेक्षा है कि वे इसे एक काव्यात्मक पुनर्संरचना (creative interpretation) के रूप में ग्रहण करें।

काव्यकार : अरुण सक्सेना (अघोर आनंद)

काव्यकार परिचय

"न जय-पराजय-कथैव इतिहासः, मातुर्वेदना तत्रापि ध्वनति।
वीरता यत्रामरत्वं याति, करुणा तत्र कालजयी भवति।

अरुण सक्सेना (अघोर आनंद) समकालीन हिंदी साहित्य के एक संवेदनशील एवं चिंतनशील रचनाकार हैं, जिनकी लेखनी भारतीय महाकाव्य परंपरा, धर्म-दर्शन तथा मानवीय संवेदनाओं के सूक्ष्मतम आयामों को गहनता से अभिव्यक्त करती है। उनके साहित्य में परंपरा की गरिमा और आधुनिक दृष्टि का संतुलित समन्वय सहज रूप से दृष्टिगोचर होता है।

वे वर्तमान में भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड (BHEL) में विद्युत अभियंता के रूप में कार्यरत हैं तथा उन्होंने हेवेट पॉलिटेक्निक, लखनऊ से अभियंत्रण की विधिवत् उपाधि (डिप्लोमा) प्राप्त की है। इसके साथ ही वे ज्योतिष-विज्ञान के प्रति विशेष अभिरुचि रखते हैं और इस क्षेत्र में सतत अध्ययनरत हैं, जिससे उनके चिंतन में दार्शनिक गहराई और दृष्टि की व्यापकता परिलक्षित होती है।

साहित्य के प्रति उनकी आंतरिक अनुरक्ति ने उन्हें ऐसे सृजन-पथ पर अग्रसर किया है, जहाँ वे प्राचीन महाकाव्यात्मक आख्यानों को नवीन संवेदना और वैचारिक गहराई के साथ पुनः प्रस्तुत करते हैं। *"अभिमन्युः हतो हतः — अभिमन्युवधसंदेश (कृष्ण–सुभद्रा संवाद)"* उनकी प्रथम प्रकाशित काव्य-कृति है, जिसमें उन्होंने अभिमन्यु-वध जैसे करुण प्रसंग को मातृत्व की दृष्टि से अत्यंत मार्मिक और विचारोत्तेजक रूप में अभिव्यक्त किया है।

लेखक का दृढ़ विश्वास है कि साहित्य केवल घटनाओं का वर्णन नहीं, बल्कि आत्ममंथन का माध्यम है—एक ऐसा दर्पण, जिसमें मनुष्य अपने समय, अपने अंतर्मन और अपने सत्य का साक्षात्कार कर सकता है। उनकी रचनाएँ इसी चेतना को जागृत करने का सतत प्रयास हैं।

सर्ग-सूची

प्रथम सर्ग — मातृ-क्रंदन 2
द्वितीय सर्ग — माधव का करुण-स्वर 6
तृतीय सर्ग — सुभद्रा के मन की व्यथा 10
चतुर्थ सर्ग — कृष्ण द्वारा युद्ध पूर्व स्थिति वर्णन 13
पंचम सर्ग — व्यूह-प्रवेश और रणोन्माद 17
षष्ठम सर्ग — वीर-गति 26
सप्तम सर्ग — धर्म और मातृत्व 36
उपसंहार : एक माँ की दृष्टि से 39
अनंतिम शब्द 44

वीरगाथा उद्घोष

वन्दे कालं धर्मचक्रं, वन्दे रणस्य सीमाम्।
यत्र कालोऽपि तिष्ठेत् मौनः सत्यं नित्यं विजयते॥
वन्दे तं बालवीरं, यः युगदीपं प्रज्वालयति।
देहः क्षणेन लीयेत, कीर्तिः तु शाश्वती भवति॥

वन्दे कालं धर्मचक्रं, वन्दे रण की रेखा।
जहाँ समय भी मौन खड़ा हो, सत्य रहे अविच्छेद्य लेखा।
वन्दे उस बाल-विक्रम को, जो युग का दीप प्रज्वलित कर जाए,
देह भले ही धूलि बने, पर कीर्ति अमरत्व पा जाए।

अभिमन्यु हतो हतः - एक खंडकाव्य

अभिमन्युवधसंदेश

कृष्ण–सुभद्रा संवाद

प्रथम सर्ग — मातृ-क्रंदन

कुरुक्षेत्र का रण अपने चरम पर था। धर्म और अधर्म की उस महावेला में प्रतिदिन असंख्य वीर धराशायी हो रहे थे, परंतु तेरहवें दिवस की संध्या ने एक ऐसी करुण घटना को जन्म दिया जिसने समस्त पाण्डव-शिविर को शोक से स्तब्ध कर दिया। उस दिन अर्जुन-पुत्र अभिमन्यु ने अद्‌भुत पराक्रम दिखाते हुए कौरवों के दुर्जेय चक्रव्यूह को भेद दिया, किंतु परिस्थितियों और छल के कारण वह व्यूह के भीतर अकेला पड़ गया। अनेक महारथियों ने एक साथ मिलकर उस बाल-वीर का वध किया।

जब यह समाचार पाण्डव शिविर पहुँचा, तब शौर्य और विजय की चर्चा नहीं, बल्कि एक माँ के हृदय का क्रंदन गूँज उठा। अभिमन्यु केवल एक योद्धा नहीं था—वह सुभद्रा की आशा, अर्जुन का गौरव और कृष्ण की आँखों का तारा था।

इस प्रसंग में सुभद्रा का हृदय शोक, आक्रोश और असहाय प्रश्नों से भर उठता है। वह अपने भ्राता कृष्ण से प्रश्न करती है—क्या यही क्षात्र-धर्म था? क्या नियति इतनी कठोर हो सकती है कि एक नवयुवक वीर को इस प्रकार रणभूमि में बलिदान होना पड़े?

इसी मातृ-वेदना, करुण पुकार और कृष्ण से किए गए हृदय-विदारक प्रश्नों को यह काव्यांश स्वर देता है, जहाँ सुभद्रा का शोक केवल एक माँ का विलाप नहीं, बल्कि धर्म, नियति और युद्ध की क्रूरता पर उठता हुआ मानवीय प्रश्न बन जाता है।

प्रथम सर्ग — मातृ-क्रंदन

हे माधव! तुम अब क्यों आए?
क्या मृत्यु-संदेश सुनाने को?
क्यों शस्त्र तुम्हारा उठ न सका,
जब शत्रु घेरे थे प्राण-हरण को?

क्या दोष यही था बालक का,
कि चक्रव्यूह वह भेद न सका?
या फिर उस क्षात्र-धर्म का,
जो बनकर रक्त रगों में धधका?

या था तुम्हारा भी दायित्व कुछ?
क्यों रण में उसे आगे धकेला?
क्या तुम भी यह न जान सके
वह व्यूह-जाल में पड़ेगा अकेला?

अभी तो जीवन की वाटिका में उसने
कुछ ही मधुमय वसंत निहारे थे;
क्या नियति में यही था लिखा
क्षण-भंगुर हुए जो स्वप्न न्यारे थे?

कैसे सहूँ मै यह वज्र-प्रहार?
क्या प्रभु को मुझसे न प्रीति थी?
क्यों छीन लिया मेरा प्राण-दीप,
जिससे मेरे जग मे दीप्ति थी?

भैया, क्या यही युद्ध-धर्म है?
क्या यही लिखी उसकी नियति?
क्या इसी हेतु गर्भ में धारण किया,
क्यों रुक न सकी काल की गति?

वह कहता था— "माता! सुनो,
एक दिन व्यूह के भीतर जाऊँगा;
शत्रु-दल को रण में रौंद-रौंद,
पिता का गौरव बढ़ाऊँगा।"

पर उसने यह कहाँ जाना था
कि व्यूह से लौट न पाऊँगा;
विजय-पताका फहराकर भी
मातृ-आँचल पुनः न पाऊँगा।

उसे विश्वास था— तात यहाँ हैं,
बंधु-बांधव सब हैं बलशाली;
निकाल कर ले आएँगे मुझे,
चाहे शत्रु हो कितना भी महाबली ।

नील-कमल-सा वह मुख, चंद्र-सा,
आज धूल में लिपटा मलिन पड़ा है;
काल के गाल में समाया बेटा मेरा-
अहो! तात विवश, शोकाकुल खड़ा है।

अभिमन्यु हतो हतः - एक खंडकाव्य

अभिमन्युवधसंदेश

कृष्ण–सुभद्रा संवाद

द्वितीय सर्ग — माधव का करुण-स्वर

सुभद्रा के हृदय से फूटे करुण प्रश्नों ने वातावरण को स्तब्ध कर दिया। एक माँ का आक्रोश, उसका विलाप और उसकी असहायता—ये सब मिलकर उस क्षण को अत्यंत मार्मिक बना रहे थे। सुभद्रा के प्रत्येक शब्द में पीड़ा थी, और प्रत्येक प्रश्न में अपने पुत्र के वध के पीछे छिपे कारणों को जानने की तीव्र व्याकुलता।

कृष्ण, जो स्वयं अभिमन्यु से अत्यंत स्नेह रखते थे, उस शोक को भीतर ही भीतर अनुभव कर रहे थे। वे जानते थे कि यह केवल युद्ध का एक प्रसंग नहीं, बल्कि एक माँ के जीवन का सबसे बड़ा वज्रपात है। अतः वे सुभद्रा को सांत्वना देते हुए धीरे-धीरे उस दिन की समस्त घटनाओं का क्रम खोलते हैं—कैसे गुरु द्रोण ने पाण्डवों को पराजित करने के लिए चक्रव्यूह की रचना की, कैसे सम्शप्तकों ने अर्जुन को दूर युद्ध में उलझा दिया, और किस प्रकार परिस्थितियों ने अभिमन्यु को उस दुर्जेय व्यूह में प्रवेश करने के लिए प्रेरित किया।

यह प्रसंग केवल एक वीरगाथा नहीं, बल्कि युद्धनीति, छल और नियति के उस जटिल ताने-बाने को उजागर करता है, जिसके मध्य एक नवयुवक महारथी ने अद्‌भुत साहस दिखाते हुए इतिहास में अमर स्थान प्राप्त किया। कृष्ण के शब्दों में वही घटना अब सुभद्रा के सम्मुख उद्‌घाटित होती है—जहाँ करुणा भी है, सत्य भी, और धर्मयुद्ध की कठोर वास्तविकता भी।

द्वितीय सर्ग — माधव का करुण-स्वर

बहन, तुम्हारा शोक मेरा है,
भीतर से मैं भी हूँ विदीर्ण।
हृदय द्रवित है, चक्षु अश्रुपूरित,
वेदना गहन, अरु श्वास कम्पित।

तुमने खोया कुलदीपक को,
रणभूमि ने अतुलित महारथी;
रहेगा सदा यह संताप मुझे,
कोई बन न सका उसका साथी।

गुरु द्रोण ने ली प्रतिज्ञा अटल,
पाण्डव-पक्ष को हराने की।
चक्रव्यूह-रचना में थे निपुण वे,
पर समस्या थी अर्जुन-उपास्थिति।

सब कौरवों ने मिलकर तब
गुरु द्रोण को पुनः आश्वस्त किया।
अर्जुन को अन्यत्र ले जाने को
सम्शप्तकों ने व्रत लिया ।

थी चाल चली शत्रु ने विकट,
अर्जुन जा न सका व्यूह के निकट।
उसे सम्शप्तकों ने ललकारा था,
सारथी था मैं, उसके साथ चला।

जयद्रथ ने भी था वचन दिया -
"न पाण्डव पहुँचेंगे व्यूह के भीतर;
युधिष्ठिर को बंदी बनाना है लक्ष्य,
फँसा कर इस व्यूह के अंतर।"

जानते थे वीर हैं एक से एक,
अभिमन्यु भी है पराक्रमी बड़ा;
न समझ सके उसका कौशल,
चक्रव्यूह रचना भेदन का।

युधिष्ठिर चक्रव्यूह के बाहर से
सेना-संचालन में थे डटे हुए।
चक्रव्यूह-भेदन न जानते थे,
पर युद्ध-नीति से थे बँधे हुए।

व्याकुल हुए युधिष्ठिर तब,
जब व्यूह-रचना का पता चला।
नहीं है अर्जुन साथ यहाँ,
शत्रु चाल से दूर चला।

देखा तब अभिमन्यु को उन्होंने
स्नेहिल दृष्टि से,मधुर वाणी से पुकारा
"पुत्र! आज है परिस्थिति विकट,
अब तुम ही हो अवलंब-अधारा।

तुम रणभूमि में प्रवेश करो,
व्यूह-भेदन कौशल दिखलाओ,
अपने तात की भाँति ही तुम
निश्चय ही यश-कीर्ति को पाओ। "

था लाल तुम्हारा महाप्रतापी,
चल पड़ा चक्रव्यूह भेदने को।
बोला— "तात! निश्चिंत रहो,
अब देखो मेरे रण-कौशल को।

बोले युधिष्ठिर—"धैर्य धरो,
व्यूह-भेद कर भीतर बढ़ो;
हम सब वीर तुम्हारे संग हैं,
चलो रिपु-छाती पर चढ़ो।

न हटना तनिक इस संकल्प से,
हम भी व्यूह के भीतर आएँगे;
तुम बस मार्ग प्रशस्त करो,
हम संग-संग आगे बढ़ जाएँगे।"

अभिमन्यु हतो हतः - एक खंडकाव्य

अभिमन्युवधसंदेश

कृष्ण–सुभद्रा संवाद

तृतीय सर्ग — सुभद्रा के मन की व्यथा

कृष्ण के शब्दों से जब उस दिन की घटनाएँ स्पष्ट होने लगीं, तब भी सुभद्रा के हृदय का संताप शांत न हो सका। सत्य सुनकर भी मातृ-वेदना को विराम कहाँ मिलता है? उलटे, जैसे-जैसे घटना का क्रम सामने आता गया, सुभद्रा के भीतर उठते प्रश्न और भी तीव्र हो उठे।

अब उसका शोक केवल पुत्र-वियोग का विलाप नहीं रह जाता, बल्कि वह नियति, युद्ध और अपने ही प्रियजनों की असहायता पर प्रश्न करने लगता है। वह कृष्ण से पूछती है—यदि वचन दिया गया था कि अभिमन्यु को सुरक्षित लौटाया जाएगा, तो वह वचन निभ क्यों न सका? इतने महारथी साथ होते हुए भी एक किशोर वीर को क्यों न बचाया जा सका?

सुभद्रा की दृष्टि में अभिमन्यु केवल एक योद्धा नहीं था—वह अभी-अभी गुरुकुल से लौटा नवयुवक, नवविवाहित पति, और एक होने वाले पिता का स्वप्न था। उसके जीवन में अभी अनगिनत वसंत आने शेष थे। यही स्मृतियाँ और संभावनाएँ सुभद्रा के शोक को और भी गहरा बना देती हैं।

इस प्रसंग में सुभद्रा का विलाप मातृत्व की उस स्वाभाविक पुकार का रूप ले लेता है, जहाँ प्रेम, पीड़ा और आक्रोश एक साथ उमड़ पड़ते हैं। उसके प्रश्न केवल कृष्ण से नहीं, बल्कि उस कठोर नियति से हैं जिसने एक नवयुवक वीर को समय से पहले काल के अधीन कर दिया।

तृतीय सर्ग — सुभद्रा के मन की व्यथा

यदि वचन दिया था लाने का,
तो क्यों सब उसे ला न सके?
यदि व्यूह में प्रवेश किया सबने,
तो कैसे उसे वे बचा न सके?

माना कि पुत्र मेरा था बलशाली,
महारथी था, महावीर बड़ा;
वह षोडश-वर्षीय कोमल किशोर,
जीवन के रंगों से था अछूता खड़ा।

अभी-अभी तो गुरुकुल से वह
विद्या लेकर घर आया था;
अभी-अभी तो हमने स्नेह सहित
उसका विवाह उत्तरा संग रचाया था।

क्या जीवन के शत-शत वसंत
देखने का उसका भाग्य न था?
क्या वह भी खिलाता पुत्र-पौत्र,
क्या प्राप्त उसे सौभाग्य न था?

है गर्भ में शिशु उत्तरा के,
जिसे अभी जन्म लेना है शेष;
क्या पुत्र मेरा देखता अपना अंश,
क्या न था उसे यह अधिकार विशेष?

कैसे मानूँ कि तुम जान न सके,
माया के तो तुम अधिपति हो;
आखिर तुम भी उसे बचा न सके,
मामा का धर्म निभा न सके।

थी पिता से आस, पर सारथी थे तुम;
क्यों रथ को तुम घुमा न सके?
चक्रव्यूह के भीतर जा न सके,
मेरे पुत्र को जीवित ला न सके।

अभिमन्यु हतो हतः - एक खंडकाव्य

अभिमन्युवधसंदेश

कृष्ण–सुभद्रा संवाद

चतुर्थ सर्ग — कृष्ण द्वारा युद्ध पूर्व स्थिति वर्णन

सुभद्रा के तीक्ष्ण और पीड़ाभरे प्रश्नों ने वातावरण को और भी गंभीर बना दिया। एक माँ का हृदय जब शोक और आक्रोश से भर उठता है, तब वह केवल सांत्वना नहीं चाहता—वह सत्य और उत्तर चाहता है। कृष्ण जानते थे कि सुभद्रा का यह प्रश्न करना स्वाभाविक है; क्योंकि उसके लिए अभिमन्यु केवल एक योद्धा नहीं, बल्कि उसके जीवन का प्राण था।

ऐसे क्षण में कृष्ण केवल भ्राता के रूप में नहीं, बल्कि उस महायुद्ध के साक्षी और नियति के गूढ़ रहस्यों को जानने वाले पुरुषोत्तम के रूप में उत्तर देते हैं। वे सुभद्रा को स्मरण कराते हैं कि इस विनाशकारी युद्ध को टालने के लिए उन्होंने स्वयं अनेक प्रयास किए थे—दुर्योधन के समक्ष शांति का प्रस्ताव रखा, यहाँ तक कि केवल पाँच ग्राम पर भी समझौता करने की बात कही। किंतु जब अहंकार और सत्ता-मद मनुष्य की बुद्धि को ढक लेते हैं, तब विनाश का मार्ग ही शेष रह जाता है।

कृष्ण यह भी स्पष्ट करते हैं कि रणभूमि में कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं जहाँ निर्णय केवल जीवन और मृत्यु का नहीं, बल्कि वीरता और कायरता के बीच होता है। अभिमन्यु का बलिदान इसी धर्मयुद्ध की एक महान किंतु करुण परिणति था। साथ ही वे सुभद्रा को भविष्य की आशा भी देते हैं—उत्तरा के गर्भ में पल रहे उस वंशदीप की रक्षा का आश्वासन, जो आगे चलकर पाण्डव वंश को जीवित रखेगा।

इस प्रकार कृष्ण के शब्दों में करुणा भी है, धर्म का विवेचन भी, और भविष्य की एक उज्ज्वल आशा भी—जो सुभद्रा के शोकाकुल हृदय को धीरे-धीरे स्थिर करने का प्रयत्न करती है।

चतुर्थ सर्ग — कृष्ण द्वारा युद्ध पूर्व स्थिति वर्णन

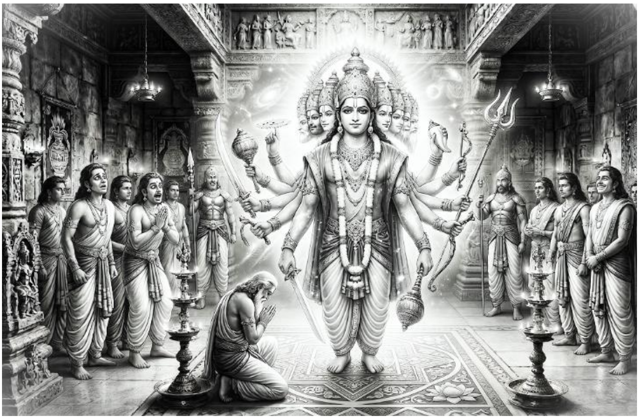

हाँ, माया का अधिपति हूँ मैं,
युद्ध की गति को जानता हूँ;
पक्ष हो या विपक्ष कोई भी,
दोनों की क्षति मैं मानता हूँ।

इसी विनाश को टालने को,
शांतनु-कुल में मेल कराने को,
शांति-दूत बन, शांति-प्रस्ताव लिए
गया था दुर्योधन को समझाने को।

उन्माद राजसत्ता का जब छाता है,
संस्कार, ज्ञान, विवेक सब जाता है;
दुर्योधन शांति-प्रस्ताव को न माना,
धृतराष्ट्र ने भी सही गलत न पहचाना।

कि द्वार पर उसके काल खड़ा था,
सभा में स्वयं महाकाल खड़ा था;
प्रस्तावित किए थे मात्र पाँच ग्राम,
दुर्योधन को ही दी थी सत्ता तमाम।

मन पर उसके था राहु का बसेरा,
आत्मा-रूपी भानु को ग्रहण ने घेरा;
अहम् उसका, मुझे थामने चला,
मायापति को साँकलों में बाँधने चला।

सुभद्रे, मैं जानूँ तेरे मन की व्यथा,
कैसे कहूँ रणभूमि की कथा।
जब युद्ध में शंखनाद उठता है,
तब कोई मार्ग न बचता है।

रथ मोड़ देता यदि उस क्षण,
तो वीरत्व अधूरा रह जाता;
वह जीवित रहता, संभव था,
पर पिता कायर कहलाता।

हाँ, मानता हूँ मैं यह भी,
मृत्यु हेतु उसकी आयु कम थी;
जीवन के शत वसंत वह देखे-
हम सबकी यही कामना थी।

उत्तरा के गर्भ की अब तुम
तनिक भी चिंता मत करो;
उसकी रक्षा हेतु इस बार
जानो— हरि स्वयं खड़े हैं।

यदि कोई कुदृष्टि फिर भी
तेरे कुलदीपक पर उठेगी,
जानो यह प्रण है मेरा,
मेरे शाप से वह न बचेगी।

सुभद्रे, मेरा विनम्र निवेदन
अब शोक-संताप को त्यागो;
शांत चित्त, दृढ़ हृदय बनकर
अपने पुत्र की वीर-गाथा सुनो।

अभिमन्यु हतो हतः - एक खंडकाव्य

अभिमन्युवधसंदेश

कृष्ण–सुभद्रा संवाद

पंचम सर्ग — व्यूह-प्रवेश और रणोन्माद

कुरुक्षेत्र के महायुद्ध का तेरहवाँ दिवस युद्धनीति और वीरता की दृष्टि से अत्यंत निर्णायक सिद्ध हुआ। उस दिन कौरव-पक्ष के सेनापति गुरु द्रोणाचार्य ने पाण्डवों को पराजित करने के उद्देश्य से एक अत्यंत दुर्जेय चक्रव्यूह की रचना की। यह ऐसी रण-रचना थी जिसे भेदना तो कुछ ही महारथी जानते थे, परन्तु उससे सुरक्षित निकलना और भी कठिन था।

युद्धभूमि में उस समय अर्जुन उपस्थित न थे; उन्हें सम्शप्तकों ने दूर युद्ध में उलझा रखा था। इस अवसर का लाभ उठाकर कौरवों ने पाण्डव सेना को व्यूह में फँसाने की योजना बनाई। पाण्डव शिविर में चिंता की लहर दौड़ गई—क्योंकि उस दुर्गम व्यूह को भेदने का कौशल केवल अर्जुन को ही पूर्ण रूप से ज्ञात था।

ऐसी विकट परिस्थिति में युवा अभिमन्यु आगे बढ़ा। वह जानता था कि चक्रव्यूह में प्रवेश कैसे किया जाता है, परंतु उससे बाहर निकलने की पूर्ण विधि उसे ज्ञात न थी। फिर भी अपने पिता के गौरव, अपने कुल के सम्मान और क्षात्र-धर्म की मर्यादा को ध्यान में रखकर वह रणभूमि में उतरा।

इसके बाद जो दृश्य कुरुक्षेत्र की धरती पर प्रकट हुआ, वह इतिहास में अद्वितीय बन गया—एक षोडश वर्षीय वीर, अकेला ही कौरवों के महाबली महारथियों के बीच प्रलय की अग्नि बनकर प्रकट हुआ। उसके धनुष से निकलते बाण मानो वज्र बनकर गिर रहे थे और कौरव सेना के एक-एक द्वार को भेदते हुए वह आगे बढ़ता जा रहा था। यही वह क्षण था जब अभिमन्यु का नाम केवल एक राजकुमार का नहीं, बल्कि अमर वीरता के प्रतीक का रूप लेने लगा।

पंचम सर्ग — व्यूह-प्रवेश और रणोन्माद

कौरव दल में सभा सजी थी,
महारथी सब विचार करें;
कैसे आज पाण्डव-सेना
विजय-पथ से दूर रहें।

द्रोण बोले आत्मविश्वास से—
"सुनो दुर्योधन, आज मैं
व्यूह-जाल महान रचूँगा,
कौरव-कुल की लाज रखूँगा।

रण-कौशल की दुर्गम विधा से
शत्रु-दल नायक को बाँधूँगा मैं;
व्यूह-जाल में फंसा युधिष्ठिर को
अपना संकल्प निभाऊँगा मैं।"

द्रोण ने व्यूह रचा अप्रतिम,
चक्राकार वह घेरा था,
घूम रहे थे दल के दल,
मानो मृत्यु का फेरा था।

कुरुक्षेत्र-भूमि में धूलि उड़ी,
गूँज रहे थे दल पदचापों से;
रणभूमि में प्रचंड गर्जना उठी,
शंखों के घोर निनादों से।

देखा यह जब युधिष्ठिर ने,
मन उनका घबराया था;
कैसे टूटेगा यह चक्रव्यूह-
इसी प्रश्न नेउन्हें सताया था।

तभी वहाँ खड़े अभिमन्यु का
तेजस्वी मुख था दमक रहा;
नेत्रों में ज्वाला प्रखर लिए,
वीर किशोर था चमक रहा।

धर्मराज ने उसे पुकारा—
"वीर पुत्र! अब समय यही,
तोड़ो व्यूह का दुर्गम द्वार,
आशा हमारी तुम पर ही।"

अभिमन्यु बोला विनय सहित
"तात! मुझे अब आज्ञा दो,
चक्रव्यूह में भीतर जाता हूँ,
रिपु-व्यूह को तोड़ गिराता हूँ।"

युधिष्ठिर बोले –"धैर्य धरो,
हम सब पीछे आएँगे;
तुम बस द्वार को भेदो वीर,
हम भी भीतर जाएँगे।"

धनुष उठाया, रथ आगे बढ़ा,
सिंहनाद प्रखर कर डाला;
भेदा व्यूह का प्रथम द्वार ,
लरजा कौरव-दल हृदय अपार ।

भेदा चक्रव्यूह, बना शत्रुहंता,
थे चकित चक्रव्यूह के नियंता;
अभिमन्यु आज हाथ न आता था,
बालक महारथियों को छकाता था।

बाणों की वर्षा होने लगी,
रथों के चक्र टूट गए;
हाथी, घोड़े, पैदल सैनिक-
क्षण भर में ही सब खेत हुये।

एक किशोर के तीव्र वार से
कौरव-दल थर्राया, टूटा;
मानो प्रलय का देव स्वयं
रणभूमि में आकर जुटा।

उधर व्यूह के बाहर खड़े,
पाण्डव भीतर आना चाहें;
पर जयद्रथ दृढ़ खड़ा हुआ,
उनको आगे बढ़ने न दे।

शिव से प्राप्त वरदान लिए,
जयद्रथ अडिग खड़ा था;
भीम, सात्यकि, नकुल, सहदेव
सबको रोक वहीं अड़ा था।

अब व्यूह के भीतर अकेला
वीर अभिमन्यु लड़ता था,
चारों ओर शत्रु दल उसका
मार्ग रोककर बढ़ता था।

रणभेरी बजी, हुआ रण विकट,
शत्रु का घेरा आया निकट।
तेरा लाल लड़ा अद्‌भुत प्रचंड,
रहा अडिग, शत्रु दिग्भ्रांत-खंड।

प्रचंड प्रहार,तोड़ा द्वितीय द्वार,
थी शल्य-सेना घबराई हुई;
कट- कट गिरे भाल पर भाल,
रिपु हिय उदासी छाई हुई।

कृतवर्मा का धनुष कटा,
गिरा भाला रण-भूमि में;
टूटा दंभ, बिखरा यश,
गिरा वह लज्जित धूलि में।

पहुंचा तृतीय द्वार,मुख तेज अपार,
मन प्रफुल्लित, हिय हर्षाता था;
"काज कुल के आऊँ, आज"-
यही सोंच-सोंच इठलाता था।

था तृतीय द्वार,शत्रु बल प्रबल,
अभिमन्यु आगमन यहाँ शीघ्र हुआ;
संचालक थे अश्वत्थामा और कृप,
यहाँ युद्ध और भी तीव्र हुआ।

युद्ध की इस विकट बेला मे,
गुरु को नमन,उसे करना था;
किया संधान बाण का फिर-
बाण प्रथम गुरु-चरण धरना था।

फिर बाणों की वर्षा करके,
अश्वत्थामा, कृप घायल किए;
युद्ध कौशल अद्‌भुत था ऐसा-
न रुके शत्रु, बिन प्रशंसा किए।

शिष्य-बाणों से घायल होकर,
गुरु कृप मन ही मन जाने—
जब शिष्य गुरु से आगे निकले,
तभी शिक्षा हुयी सफल माने।

चौथे द्वार पर दुर्योधन खड़ा,
डटा स्वयं संभालने कमान;
सोचा “अब न बचे अभिमन्यु”
अपने बल का अभिमान महान।

हृदय मे मिश्रित भाव लिए तब,
अभिमन्यु रिपु देख मुस्काया था;
बाणों से घायल हुआ दुर्योधन,
मिल महारथियों ने बचाया था।

तब कर्ण ने प्रण यह किया-
“पंचम द्वार से न जाने दूँगा;
उसे घेर मै बाँधूँगा पाश में,
अब न प्रलय मचाने दूँगा।“

अस्त्र शस्त्र सब धरे रह गए,
भीतर बढ़ा जब द्वार पंचम में;
अभिमन्यु से हुये पराजित कर्ण,
दुशासन-पुत्र निज दंभ में।

दुर्योधन, कर्ण,अश्वथामा,कृप
थे त्वरित वेग से पीछे पड़े;
जैसे अनल जलाए वन के वन,
वायु की गति सहायक बने।

द्रुत युद्ध-गति देख अभिमन्यु की
रह गए सभी चकित, अचंभित;
मानो प्रलयकालीन अग्नि ने
षष्ठम द्वार स्वयं किया वेधित।

रोकने खड़ा था दुर्योधन-पुत्र,
लक्ष्मण द्वार पर बनकर प्रहरी;
प्रथम लक्ष्य मे अभिमन्यु ने चुने,
घोड़े रथ के, द्वितीय में सारथी।

चढा बाण प्रत्यंचा पर तीसरा,
लक्ष्य पर भ्राता लक्ष्मण खड़ा;
गुरु द्रोण ने भाँपा संकट विकट,
किया रोकने का प्रयत्न बड़ा।

रोके न रुका अभिमन्यु कहीं,
लक्ष्य पथ पर बढ़ता चला;
स्तब्ध खड़े द्रोण, कर्ण, कृप-
लक्ष्मण भी धनुष संधान चला।

दुर्योधन, दुशासन ने भी शस्त्रों से,
रोकने का विफल प्रयास किया;
पर अभिमन्यु के शस्त्र कौशल ने
अब और अधिक विन्यास लिया।

थे वार अचूक, घातक प्रबल,
शत्रु समक्ष न क्षण भर ठहरा;
लड़ने की चेष्टा की लक्ष्मण ने पर,
मस्तक पर घाव बना घहरा।

कटा लक्ष्मण-शीश मुकुट सहित,
रणभूमि मे गिर कर मलिन हुआ;
दुर्योधन यह दृश्य न सह सका,
मन में उसके उद्वेलन हुआ।

अभिमन्यु हतो हतः - एक खंडकाव्य

अभिमन्युवधसंदेश

कृष्ण–सुभद्रा संवाद

षष्ठम सर्ग — वीर-गति

चक्रव्यूह के एक-एक द्वार को भेदते हुए अभिमन्यु अब उस दुर्जेय रणरचना के गहनतम भाग में पहुँच चुका था। उसके बाणों की प्रचंड वर्षा और अद्वितीय युद्ध-कौशल ने कौरव सेना को विचलित कर दिया था। महारथियों से घिरी उस रणभूमि में एक किशोर योद्धा का ऐसा पराक्रम देख कौरव दल में भय और व्याकुलता फैलने लगी।

जब अभिमन्यु ने व्यूह के छह द्वारों को भेद डाला और कौरवों के प्रमुख योद्धाओं को परास्त कर दिया, तब कौरव-पक्ष के सेनानायकों को यह स्पष्ट हो गया कि यदि उसे अभी न रोका गया, तो चक्रव्यूह की संपूर्ण रचना ध्वस्त हो जाएगी। उस क्षण कौरव महारथियों ने धर्मयुद्ध के नियमों को तिलांजलि देकर छल और अन्याय का मार्ग अपनाने का निर्णय लिया।

गुरु द्रोणाचार्य के संकेत पर अनेक महारथी एक साथ उस अकेले वीर पर टूट पड़े। उसके धनुष को तोड़ा गया, रथ को नष्ट किया गया और उसे निहत्था करने के लिए विभिन्न युक्तियाँ अपनाई गईं। किंतु अभिमन्यु ने तब भी युद्ध से पीछे हटना स्वीकार नहीं किया। धनुष टूटने पर तलवार, तलवार छिनने पर गदा, और अंततः निहत्थे होकर भी वह सिंह की भाँति शत्रुओं के बीच डटा रहा।

अंततः असंख्य महारथियों के संयुक्त आक्रमण और छलपूर्ण प्रहारों के बीच वह वीर रणभूमि में गिर पड़ा। किंतु उसका पतन पराजय नहीं था— वह एक ऐसे बलिदान का क्षण था जिसने इतिहास में अमिट स्थान बना लिया। कुरुक्षेत्र की धूलि उस दिन एक किशोर वीर के रक्त से लाल हुई, और उसी क्षण अभिमन्यु का नाम केवल एक योद्धा का नहीं, बल्कि अमर वीरता, धर्म और त्याग के प्रतीक का रूप ले लिया।

षष्ठम सर्ग — वीर-गति

द्वार पर द्वार वह भेदता गया,
बाणों से शत्रु हृदय वेधता गया;
तेरे लाल ने भेद डाले छह द्वार,
शत्रु-पक्ष में मचा हाहाकार।

धूलि, रक्त और बाणों का
रणभूमि मे भयंकर दृश्य बना;
कुरुक्षेत्र की उस धरती पर,
अभिमन्यु का वीरत्व प्रचंड बना।

दुर्योधन, दुशासन-पुत्र अनेक
डरे,उसके प्रहारों से हारे;
कई हुये घायल, भागे कई,
कुछ उसके हाथों गए मारे।

रणभूमि में कौरव-सैनिकों में
चहुंओर था हाहाकार मचा;
व्यूह-रचयिता द्रोण व्याकुल-
अब शेष अंतिम द्वार बचा।

रोका न गया अब यदि इस
पराक्रमी तरुण को भीतर ही,
तो हांथ न कुछ भी आएगा;
कौरव-सेना के महारथी को
एक बालक धूल चटाएगा।

अंततः प्रारम्भ हुई मंत्रणा तब,
जुटे कौरव-पक्ष के महाबली;
करो प्रयुक्त साम, दाम, दंड भेद,
है मृत्यु अटल, यदि अब न टली।

बोले गुरु द्रोणाचार्य तब,
व्यूह टूटते देख व्याकुल;
नभ की ओर निहारते बोले
"ढलता सूर्य, सेना शिथिल।

जब तक हाथ में उसके धनुष
और पास मे उसके रथ है,
तब तक हराना उसे युद्ध में
असंभव सब प्रयास व्यर्थ है।

नष्ट करो उसका धनुष,रथ-
चाहे युक्ति से या बल से;
रथ को तोड़, करो उसे पैदल,
चाहे सब मिलकर या छल से।"

द्रोणाचार्य के अनीति-वचनों को
सबने हृदय मे आत्मसात किया;
कोई लपका रथ की ओर,
किसी ने सारथी पर आघात किया।

धर्म और नीति की सीमा को
उस दिन सबने भंग किया;
कर्ण ने पीछे से काटा धनुष,
कृतवर्मा, कृप ने रथ भंग किया।

रथ हुआ चूर अनीति रण में उसका,
सारथी-घोड़े चिरनिंद्रा में सो गए;
पर वीर अभिमन्यु निहत्थे भी
शत्रु-दलन को इन्द्र सम हो गए।

धनुष टूटा तो तलवार उठी,
तलवार छिनी तो गदा उठी;
हर शस्त्र बना काल रिपु का,
जहाँ- जहाँ उसकी दृष्टि पड़ी।

जैसे घिरा हो सिंह जाल में,
डटा रहा वह विपत्ति-काल में;
पैदल हुआ, पर न युद्ध रुका-
असत्य के आगे कब सत्य झुका।

हुए शत्रु प्रबल, मिल किया छल,
कायरता पूर्ण, असत्य का बल;
सबने घेरा कर संयुक्त प्रयत्न,
न माना कोई धर्मयुद्ध नियम।

दुर्योधन के हृदय का दर्प प्रबल,
विष बनकर कर्ण के बाणों में ढल;
जब धनुष की प्रत्यंचा से छूटा,
बन काल लक्ष्य पर टूटा।

वह चक्रव्यूह में घिरता गया,
सबने एक साथ था वार किया;
किया प्रयत्न चक्रव्यूह तोड़ने का,
रण को अपने पक्ष में मोड़ने का।

थका शरीर, पर मन अडिग था,
था अभी रण -पथ मे डटा हुआ;
अस्ताचल सूर्य भी था ज्यों,
अंतिम अर्घ्य को रुका हुआ।

दुर्योधन, कर्ण ने अन्याय किया,
कृप, गुरु द्रोण ने भी साथ दिया;
अश्वत्थामा का क्रोध प्रखंड हुआ,
दुःशासन-पुत्र ने प्रहार प्रचंड किया।

गदा-आघात से घायल होकर,
भूमि पर जब गिरने लगा,
तब भी शत्रु-दल के सम्मुख
सिंह समान वह लड़ने लगा।

अंततः शक्ति क्षीण हुई,
शरीर और न सह पाया;
याद पिता को किया उसने,
वीरता का ध्वज लहराया।

नियति यही थी, विधि ने लिखा,
अंत समय कोई मार्ग न दिखा;
जानता था कि वह व्यूह में फँसा,
अब न कोई आस, फिर वह हँसा।

पाया स्वयं को ज्यों तेरे आँचल मे,
धरती की गोद में जब गिर पड़ा;
टूट रहा था जीवन का दीपक,
ज्यों संध्या का सूरज ढल पड़ा।

धीमे-धीमे मंद हुए स्वर सब,
रण का कोलाहल थमने लगा;
पिता का स्वर भी दूर कहीं
कानों मे मद्धिम पड़ने लगा।

ज्यों-ज्यों श्वासें मंद हुईं,
स्मृतियाँ सजीव हो चलीं;
गर्भ में सुनी वह मधुर वाणी
स्मृति से कर्णों में घुली।

याद आया वह कोमल क्षण—
जब व्यूह-भेदन का रहस्य सुना;
पर निद्रा ने जब तुझे घेरा माँ,
रह गया रहस्य अधूरा, अनसुना।

वह बोला "अधूरे ज्ञान सहित
मैं रण-पथ पर डटा खड़ा हूँ;
माँ! तेरे आँचल की स्मृति लिए,
मैं मृत्यु से निडर निर्भीक अड़ा हूँ।"

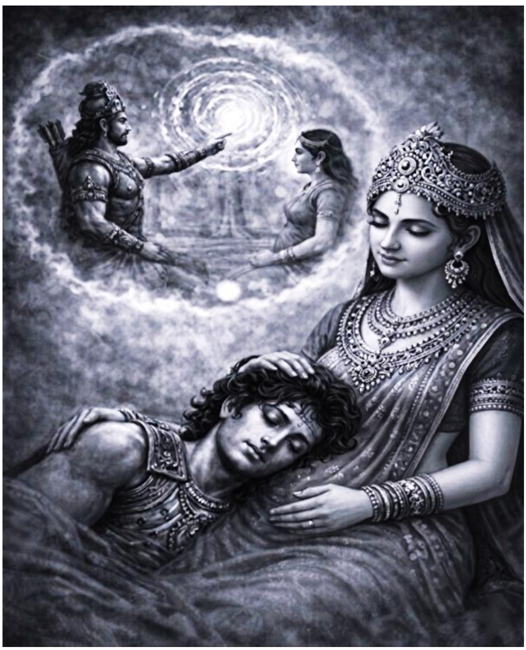

धीरे-धीरे ढलती साँसों में
तेरा ममतामयी स्पर्श याद आया;
ज्यों गोद मे लोरी सुनते-सुनते-
"तेरे पुत्र ने अब विश्राम पाया।"

रण को ही जीवन मान लिया,
वीरत्व ही था उसका आवरण;
हँसकर काल का वरण किया-
अमरत्व ने किया उसका वरण ।

अंतिम क्षण उसने तुझे याद किया
और अविनाशी का धन्यवाद किया;
चला वह अनंत आकाश की ओर,
नश्वर देह को धरती पर छोड़।

"कृप की करुणा भी मौन खड़ी थी,
द्रोण की दृष्टि भी रणभूमि में गड़ी थी।

रक्त से भीगी धरती पर प्रकृति
वीरत्व की गाथा जब लिखेगी,
एक किशोर की अमर कहानी
युग-युग तक जनमानस में दिखेगी।

कुरुक्षेत्र की धूलि में आज भी
उसकी स्मृति जगती है;
वीरता, त्याग और धर्म की
अमर कहानी कहती है।

जो रण में सत्य हेतु लड़े,
वे मृत्यु से डरते नहीं;
अभिमन्यु जैसे वीर अमर-
कालजयी हैं, मरते नहीं।

युग बीतें, इतिहास बदलें,
पर यह गाथा अमर रहे;
चक्रव्यूह में लड़ने वाला
वीर अभिमन्यु अमर रहे।

अभिमन्यु हतो हतः - एक खंडकाव्य

अभिमन्युवधसंदेश

कृष्ण–सुभद्रा संवाद

सप्तम सर्ग — धर्म और मातृत्व

अभिमन्यु के वीरगति प्राप्त करने की कथा सुनाते हुए वातावरण गंभीर और मौन हो गया। रणभूमि की गर्जना अब स्मृति बन चुकी थी, पर उसके पीछे छूटे हृदयों में वेदना अभी भी धधक रही थी। विशेषतः सुभद्रा के लिए यह केवल एक युद्ध की घटना नहीं थी—यह उसके जीवन का सबसे गहरा आघात था।

कृष्ण जानते थे कि ऐसी पीड़ा को केवल घटनाओं के वर्णन से शांत नहीं किया जा सकता। इसलिए वे सुभद्रा को जीवन, मृत्यु और आत्मा के सनातन सत्य का स्मरण कराते हैं। वे बताते हैं कि देह नश्वर है, पर आत्मा अनश्वर है; और जो वीर धर्म की रक्षा के लिए रणभूमि में गिरता है, वह मृत्यु से परे जाकर युगों की प्रेरणा बन जाता है।

किन्तु मातृत्व का हृदय तर्क और दर्शन से सहज ही संतुष्ट नहीं होता। सुभद्रा के लिए अभिमन्यु केवल एक योद्धा नहीं था—वह उसका पुत्र था, उसकी आँखों का प्रकाश, उसके जीवन का अंश। अतः कृष्ण के गहन आध्यात्मिक वचनों के बीच सुभद्रा की पीड़ा फिर से मुखर हो उठती है। वह प्रश्न करती है—क्या एक माँ के शोक को धर्म और गीता के उपदेशों से शांत किया जा सकता है?

इसी द्वंद्व—धर्म के शाश्वत सत्य और मातृत्व की करुण संवेदना—के बीच यह सर्ग आगे बढ़ता है, जहाँ दर्शन और भावना एक-दूसरे के सम्मुख खड़े दिखाई देते हैं।

सप्तम सर्ग — धर्म और मातृत्व

सुभद्रे, देह क्षणिक है केवल,
आत्मा का पथ रुकता नहीं;
जो जन्मा है, वह जाएगा,
जो गया, लौट आ जाएगा।

यदि कर्म का बंधन, कटा नहीं,
तो धर्म-चक्र फिर थमा नहीं;
मैं काल भी हूँ, साक्षी भी हूँ,
पर कर्म स्वयं ही फलता है।

वीर वही जो रण में गिरकर
युग के हेतु संवरता है;
चक्रव्यूह शस्त्र-विन्यास न था,
वह काल-चक्र का प्रवाह था।

अभिमन्यु देह से दूर हुआ,
पर अमर प्रेरणा का स्रोत हुआ।

हे केशव, तुम न जानोगे,
माँ का मन क्या पहचानोगे?
माना कि धर्मयुद्ध की वेदी पर
दी उसने आहुति स्वयं।

पर मैं अपने इस मन को
क्या बातों से समझा सकती हूँ?
एक माँ के हृदय को क्या
गीता का पाठ पढ़ा सकती हूँ?

मौन हुए माधव उस क्षण,
नयन हुए गंभीर;
पांचाली भी स्थिर खड़ी थी,
शोकाकुल और अधीर।

उपसंहार : एक माँ की दृष्टि से

कुछ अनुत्तरितप्रश्न जो हर काल खंड में कालजयी बनकर खड़े हैं

यह पद्यांश उन प्रश्नों की अभिव्यक्ति है जो किसी एक युग, एक युद्ध या एक कथा तक सीमित नहीं हैं। मानव सभ्यता के आरंभ से लेकर आज तक युद्ध, सत्ता और संघर्ष की घटनाएँ बार-बार इतिहास में दोहराई गई हैं। वीरता और विजय की गाथाएँ लिखी जाती हैं, परंतु उन गाथाओं के पीछे छिपे दुःख, प्रतीक्षा और विछोह को बहुत कम स्वर मिलता है।

यह काव्य एक स्त्री के, एक माँ के अंतर्मन से उठे उन्हीं प्रश्नों का स्वर है—ऐसे प्रश्न जो किसी युद्धभूमि के बाहर खड़े रह जाते हैं। रणभूमि में वीरगति पाने वालों का यश अमर होता है, पर घर की चौखट पर प्रतीक्षा करती माँ, पत्नी और बहन की पीड़ा इतिहास के पृष्ठों में अक्सर अनकही रह जाती है।

इन पंक्तियों में वही करुण प्रश्न उठते हैं—क्या युद्ध का अंत कभी होगा? क्या मानवता कभी समझ पाएगी कि प्रत्येक संघर्ष की सबसे गहरी चोट उन हृदयों पर पड़ती है जो युद्ध नहीं लड़ते, फिर भी उसका दंड भोगते हैं?

इस प्रकार यह कविता केवल अतीत की कथा नहीं, बल्कि हर युग में उपस्थित उन अनुत्तरित प्रश्नों की गूँज है, जो आज भी मानवता से शांति, करुणा और संवेदना की पुकार करते हैं।

उपसंहार : एक माँ की दृष्टि से

कुछ अनुत्तरितप्रश्न जो हर काल खंड में कालजयी बनकर खड़े हैं

प्रश्न अनेक हैं स्त्री मन में,
संताप हृदय पर भारी है;
कोई न समझे अंतरमन को,
वेदना समझे केवल नारी है।

करुणा-ममता नारी के तत्त्व,
क्या पुरुष-मन इन्हें कभी समझेगा?
रुकेगा कभी क्या युद्ध धरा पर,
क्या स्त्री-क्रंदन कभी थमेगा?

माना युद्ध कभी आवश्यक है,
जब बात अस्मिता पर आती है;
पर क्यों न यह कोई समझ सके,
जो विपदा स्त्री-बालक पर छाती है।

हैं वीर जो रणभूमि में लड़े,
और वीरगति को प्राप्त हुए;
उनका क्या जो लौटने की आशा में,
दुःख-संताप को प्राप्त हुए?

देखो माधव, आज भी जग में
अग्नि-लपट-से युद्ध जलते हैं;
नगर-नगर में धुआँ उठे तो
माँ के सपने भी पल में ढलते हैं।

कहीं शिशु रोते, भूख से तड़पते,
कहीं घर-आँगन राख हुए;
कल तक जिनमें दीप जले थे,
आज वहाँ पर चिता जले।

सीमा पर जब रण-संग्राम हो,
वीर भले ही कीर्ति कमाते;
पर पीछे घर की चौखट मे,
प्रेयसी नयन हैं अकुलाते।

पत्नी, माँ और बहन की आँखें
आस लगाए द्वार सजातीं;
पर संदेश जब मृत्यु का आता,
आशा की ज्योति है बुझ जाती।

क्यों इतिहास यही दोहराता—
रक्त-रंजित हर युग की गाथा?
कब समझेगा यह मानव-जगत,
शांति ही है जीवन-पथ आशा?

कितनी गोदें सूनी होतीं,
कितने आँगन वीरान हुए;
कल तक जिनमें हँसी गूँजती,
आज वहाँ बस श्मशान हुए।

कितने सपने टूट गए हैं,
कितनी आँखें पथराई हैं;
रण की धूलि में मानवता की
कितनी आशाएँ बिखराई हैं।

कितनी माताएँ रोती हैं,
कितनी पत्नियाँ विरह सहतीं;
अधरों पर मुस्कान लिए भी
अंतर में पीड़ा ही रहती।

कब समझेगा यह मानव-जगत
रक्त से शांति नहीं मिलती;
करुणा, प्रेम और सह-अस्तित्व से
ही धरती पर है ज्योति खिलती।

अनंतिम शब्द

कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हो गया, भूमि सदा के लिए लहू के लाल हो गई,रथों के पहिए थम गए, और रणभूमि के गर्जन इतिहास बन गए। पर कुछ नाम ऐसे होते हैं जो युद्ध की समाप्ति के साथ समाप्त नहीं होते। अभिमन्यु उन्हीं नामों में से एक है।

वह केवल एक वीर योद्धा नहीं था, वह उस अटूट साहस का प्रतीक था। जो अन्याय के सामने झुकना नहीं जानता।

उसने विजय की आशा से नहीं, धर्म के विश्वास से युद्ध किया। और इसी कारण उसका बलिदान पराजय नहीं, अमरत्व बन गया।

इतिहास के पृष्ठों पर अनेक युद्ध लिखे गए हैं, परन्तु कुछ ही योद्धा ऐसे हैं जो अपने जीवन से अधिक अपने बलिदान के कारण अमर हुए।

अभिमन्यु उन्हीं में से एक है।

जब भी कोई युवा साहस, धर्म और स्वाभिमान के साथ जीवन की रणभूमि में उतरता है, तो कहीं न कहीं

अभिमन्यु की वही ज्वाला फिर प्रज्वलित होती है। क्योंकि समय बदल सकता है, पर वीरता का अर्थ नहीं बदलता।

और अंततः— देह नश्वर है, पर धर्म के लिए किया गया साहस काल से भी परे अमर हो जाता है।

काव्यकार : अरुण सक्सेना (अघोर आनंद)